अनेकान्तवाद : समन्वय का आधार

❑ प्रोफेसर डॉ. प्रेम सुमन जैन, उदयपुर

अनेकांत वस्तुतः समन्वय का आधार है। एक ही सत्य-तथ्य को अनेक पहलूओं से उजागर करना ही अनेकांत है। प्रमाण एवं नय के आलोक में ही अनेकांत के दिग्दर्शन हो सकते है। अनेकांत समस्याओं के सुलझाने हेतु एक न्यायाधीश की भाँति कार्य करता है। प्रो. डॉ. श्री प्रेमसुमन जैन अनेकांत दर्शन को वर्तमान युग के सन्दर्भ में व्याख्यायित कर रहे हैं।

— सम्पादक

सत्य सापेक्ष है

भगवान् महावीर ने ज्ञान के भेद-प्रभेदों का जो प्रतिपादन किया, उसके द्वारा आत्मा के क्रमिक विकास का पता चलता है तथा इस वस्तुस्थिति का भी भान होता है कि हम ज्ञान की कितनी छोटी-सी किरण को पकड़े बैठे हैं, जबकि सत्य की जानकारी सूर्य-सदृश प्रकाश वाले ज्ञान से हो पाती है। महावीर ने इस क्षेत्र में एक अद्भुत कार्य और किया। उनके युग में चिन्तन की धारा अनेक टुकड़ों में बंट गयी थी। सभी विचारक अपनी दृष्टि से सत्य को पूर्णरूपेण जान लेने का दावा कर रहे थे। प्रत्येक के कथन में दृढ़ता थी कि सत्य मेरे कथन में ही है, अन्यत्र नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि अज्ञानी एवं अन्धविश्वासी लोगों का कुछ निश्चित समुदाय प्रत्येक के साथ जुड़ गया था। अतः प्रत्येक सम्प्रदाय का सत्य अलग-अलग हो गया था।

महावीर यह सब देख-सुनकर आश्चर्य में थे कि सत्य के इतने दावेदार कैसे हो सकते हैं ? प्रत्येक अपने को ही सत्य का बोधक समझता है, दूसरे को नहीं। ऐसी स्थिति में महावीर ने अपनी साधना एवं अनुभव के आधार पर कहा कि सत्य उतना ही नहीं है, जिसे मैं देख या जान रहा हूँ। यह वस्तु के एक धर्म का ज्ञान है, एक गुण का। पदार्थ में अनन्त गुण एवं अनन्त पर्यायें हैं। किन्तु व्यवहार में उसका कोई एक स्वरूप ही हमारे सामने आता है। उसे ही हम जान पाते हैं। अतः प्रत्येक वस्तु का ज्ञान सापेक्ष रूप से हो सकता है। पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के दो साधन हैं - प्रमाण एवं नय। जब हम केवलज्ञान जैसे प्रामाणिक ज्ञान के अधिकारी होते हैं तब वस्तु को पूर्णरूपेण जानने की क्षमता रखते हैं। किन्तु जब हमारा ज्ञान इससे कम होता है तो हम वस्तु के एक अंश को जानते हैं, जिसे नय कहते हैं। लेकिन जब हम वस्तु को जानकर उसका स्वरूप कहने लगते हैं तो एक समय में उसके एक अंश को ही कह पायेंगे। अतः सत्य को सापेक्ष मानना चाहिए।

अनिर्वचनीय अस्तित्व

उस युग में महावीर की इस बात से अधिकांश लोग सहमत नहीं हो पाये। लोगों को आश्चर्य होता यह देखकर कि यह कैसा तीर्थंकर है, जो एक ही वस्तु को कहता है – 'है' और कहता है – 'नहीं है।' अपनी बात को भी सही कहता है और जो दूसरों का कथन है उसे भी गलत नहीं मानता। इस आश्चर्य के कारण उस युग में भी महावीर के अनुयायी उतने नहीं बने, जितने दूसरे विचारकों के थे। क्योंकि व्यक्ति तभी अनुयायी बनता है, जब उसका गुरु कोई बंधी-बंधाई बात कहता हो। जो यह सुरक्षा देता हो कि मेरा उपदेश तुम्हें निश्चित रूप से मोक्ष दिला देगा। महावीर ने यह कभी नहीं कहा। इस कारण उनके ज्ञान और उपदेशों से वही श्रावक बन सके जो स्वयं के पुरुषार्थ में विश्वास रखते थे एवं बुद्धिमान थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर जैसा गैरदावेदार आदमी ही नहीं हुआ इस जगत् में। उनका एकदम असाम्प्रदायिक चित्त था। इसी कारण वे सत्य को विभिन्न कोनों से देख सके हैं। महावीर के पूर्व उपनिषद् कहते थे कि ब्रह्म की व्याख्या नहीं हो सकती। बड़ा अद्भुत है उसका स्वरूप। महावीर ने कहा ब्रह्म तो बहुत दूर की चीज है, तुम एक घड़े की ही व्याख्या नहीं कर सकते। उसका अस्तित्व भी अनिर्वचनीय है। इसे महावीर ने विस्तार से समझाया।

सप्तभंगी

महावीर के पूर्व सत्य के सम्बन्ध में तीन दृष्टिकोण थे- (१) है, (२) नहीं है और (३) दोनों – नहीं भी एवं है भी। घट के सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि वह घट है, कोई कपड़ा आदि नहीं। घट नहीं है, क्योंकि वह तो मिट्टी है। तथा घड़े के अर्थ में वह घड़ा है तथा मिट्टी के अर्थ में घड़ा नहीं है। इस प्रकार वस्तु को इस त्रिभंगी से देखा जाता था। महावीर ने कहा कि सिर्फ तीन से काम नहीं चलेगा। सत्य और भी जटिल है। अतः उन्होंने इसमें चार सम्भावनाएं और जोड़ दीं। उन्होंने कहा कि घट स्यात् अनिर्वचनीय है, क्योंकि न तो वह मिट्टी कहा जा सकता है और न घड़ा ही। इसी अनिर्वचनीय को महावीर ने प्रथम तीन के साथ और जोड़ दिया। इस प्रकार सप्तभंगी द्वारा वे पदार्थ के स्वरूप की व्याख्या करना चाहते थे।

इस सप्तभंगी नय को महावीर ने अनेक दृष्टान्तों द्वारा समझाया है। उनमें छह अन्धों और हाथी का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। आप इसे अन्य उदाहरण से समझें। एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र, पति, मामा, भानजा, काका, भतीजा इत्यादि सभी हो सकता है। एक साथ होता है। किन्तु उसे ऐसा सब कुछ एक साथ नहीं कहा जा सकता। उसकी एक विशेषता को मुख्य और शेष को गौण रखकर ही कहना होगा। यहाँ गौण रखने का अभिप्राय उसकी विशेषताओं का अस्वीकार नहीं है और न संशय या अनिश्चय ही। बल्कि व्यावहारिकता का निर्वाह है। अतः किसी वस्तु का युगपद् कथन न जरूरी है और न सम्भव। फिर भी उसकी पूर्णता अवश्य बनी रहती है। वस्तुओं के इस अनेकत्व को मानना ही अनेकान्तवाद है।

स्याद्वाद कोई संशयवाद नहीं

पदार्थों की अनेकता स्वयं द्रव्य के स्वरूप में छिपी है, प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य से युक्त होता है। प्रत्येक क्षण उसमें नयी पर्याय की उत्पति, पुरानी पर्याय का नाश एवं द्रव्यपने की स्थिरता बनी रहती है। इसी बात को कहने के लिए महावीर ने अनेकान्त की बात कही। वस्तु का अनेकधर्मा होना अनेकान्तवाद है तथा उसे अभिव्यक्त करने की शैली का नाम स्याद्वाद कोई संशयवाद नहीं है। अपितु स्यात् शब्द का प्रयोग वस्तु के एक और गुण की सम्भावना का द्योतक है।

स्याद्वाद महावीर के जीवन में व्याप्त था। उनके बचपन में ही स्याद्वादी चिंतन प्रारम्भ हो गया था। कहा जाता है कि एक दिन वर्द्धमान के कुछ बालक साथी उन्हें खोजते हुए माँ त्रिशला के पास पहुँचे। त्रिशला ने कह दिया – वर्द्धमान भवन में ऊपर है। बच्चे सबसे ऊपरी खण्ड पर पहुँच गये। वहाँ पिता सिद्धार्थ थे, वर्द्धमान नहीं। जब बच्चों ने पिता सिद्धार्थ से पूछा तो उन्होंने कह दिया – वर्द्धमान नीचे है। बच्चों को बीच की एक मंजिल में वर्द्धमान मिल गये। बच्चों ने महावीर से शिकायत की कि आज आपकी माँ एवं पिता दोनों ने झूठ बोला।

वर्द्धमान ने अपने साथियों से कहा – तुम्हें भ्रम हुआ है। माँ एवं पिताजी दोनों ने सत्य कहा था। तुम्हारे समझने का फर्क है। माँ नीचे की मंजिल पर खड़ी थी। अतः उनकी अपेक्षा मैं ऊपर था और पिताजी सबसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपरी खण्ड पर थे इसलिए उनकी अपेक्षा मैं नीचे था। वस्तुओं की सभी स्थितियों के सम्बन्ध में इसी प्रकार सोचने से हम सत्य तक पहुँच सकते हैं। भ्रम में नहीं पड़ते। वर्द्धमान की यह व्याख्या सुनकर बालक हैरान रह गये। महावीर स्याद्वाद की बात कह गये।

स्याद्वाद और अनेकान्त का सम्बन्ध

स्याद्वाद और अनेकान्तवाद में घनिष्ठ सम्बन्ध है। भगवान् महावीर ने इन दोनों के स्वरूप एवं महत्व को स्पष्ट किया है। अनेकान्तवाद के मूल में है – सत्य की खोज। महावीर ने अपने अनुभव से जाना था कि जगत् में परमात्मा अथवा विश्व की बात तो अलग व्यक्ति अपने सीमित ज्ञान द्वारा घट को भी पूर्ण रूप से नहीं जान पाता। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि गुणों से युक्त वह घट छोटा-बड़ा, काला-सफेद, हल्का-भारी, उत्पत्ति-नाश आदि अनन्त धर्मों से युक्त है। पर जब कोई व्यक्ति उसका स्वरूप कहने लगता है तो एक बार में उसके किसी एक गुण को ही कह पाता है। यही स्थिति संसार की प्रत्येक वस्तु की है।

हम प्रतिदिन सोने का आभूषण देखते हैं। लकड़ी की टेबिल देखते हैं। और कुछ दिनों बाद इनके बनते-बिगड़ते रूप भी देखते हैं किन्तु सोना और लकड़ी वही बनी रहती है। आज के मशीनी युग में किसी धातु के कारखाने में हम खड़े हो जायें तो देखेंगे कि प्रारम्भ में पत्थर का एक टुकड़ा मशीन में प्रवेश करता है और अन्त में जस्ता, तांबा आदि के रूप में बाहर आता है। वस्तु के इसी स्वरूप के कारण महावीर ने कहा था प्रत्येक पदार्थ उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता से युक्त है। द्रव्य के इस स्वरूप को ध्यान में रखकर उन्होंने जड़ और चेतन आदि छः द्रव्यों की व्याख्या की है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान आदि पाँच ज्ञानों के स्वरूप को समझाया है। केवलज्ञान द्वारा हम सत्य को पूर्णतः जान पाते हैं। अतः सामान्य ज्ञान के रहते हम वस्तु को पूर्णतः जानने का दावा नहीं कर सकते। जान कर भी उसे सभी दृष्टियों से अभिव्यक्त नहीं कर सकते। इसलिए सापेक्ष कथन की अनिवार्यता है। सत्य के खोज की यह पगडंडी है।

अनेकान्तः सत्य का परिचायक

अनेकान्त-दर्शन महावीर की सत्य के प्रति निष्ठा का परिचायक है। उनके सम्पूर्ण और यथार्थ ज्ञान का द्योतक है। महावीर की अहिंसा का प्रतिबिम्ब है – स्याद्वाद। उनके जीवन की साधना रही है कि सत्य का उद्घाटन भी सही हो तथा उसके कथन में भी किसी का विरोध न हो। यह तभी सम्भव है जब हम किसी वस्तु का स्वरूप कहते समय उसके अन्य पक्ष को भी ध्यान में रखें तथा अपनी बात भी प्रामाणिकता से कहें। स्यात् शब्द के प्रयोग द्वारा यह सम्भव है। यहाँ स्यात् का अर्थ है – किसी अपेक्षा से यह वस्तु ऐसी है।

विश्व की तमाम चीजें अनेकान्तमय हैं। अनेकान्त का अर्थ है – नाना धर्म। अनेक यानी नाना और अन्त यानी धर्म और इसलिए नाना धर्म को अनेकान्त कहते हैं। अतः प्रत्येक वस्तु में नाना धर्म पाये जाने के कारण उसे अनेकान्तमय अथवा अनेकान्तस्वरूप कहा गया है। अनेकान्तवाद स्वरूपता वस्तु में स्वयं है, – आरोपित या काल्पनिक नहीं है। एक भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो सर्वथा एकान्तस्वरूप (एकधर्मात्मक) हो। उदाहरणार्थ यहलोक, जो हमारे और आपके प्रत्यक्ष गोचर है, चर और अचर अथवा जीव और अजीव इन दो द्रव्यों से युक्त है। वह सामान्य की अपेक्षा एक होता हुआ भी इन दो द्रव्यों की अपेक्षा अनेक भी है और इस तरह वह अनेकान्तमय सिद्ध है।

जो जल प्यास को शान्त करने, खेती को पैदा करने आदि में सहायक होने से प्राणियों का प्राण है / जीवन है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वही बाढ़ लाने, डूबकर मरने आदि में कारण होने से उनका घातक भी है। कौन नहीं जानता कि अग्नि कितनी संहारक है, पर वही अग्नि हमारे भोजन बनाने आदि में परम सहायक भी है। भूखे को भोजन प्राणदायक है, पर वही भोजन अजीर्ण वाले अथवा मियादी बुखार वाले बीमार आदमी के लिए विष है। मकान, किताब, कपड़ा, सभा, संघ, देश आदि ये सब अनेकान्त ही तो हैं। अकेली ईटों या चूने-गारे का नाम मकान नहीं है। उनके मिलाप का नाम ही मकान है। एक-एक पन्ना किताब नहीं है, नाना पन्नों के समूह का नाम किताब है। एक-एक सूत कपड़ा नहीं कहलाता। ताने-बाने रूप अनेक सूतों के संयोग को कपड़ा कहते हैं। एक व्यक्ति को कोई सभा या संघ नहीं कहता। उनके समुदाय को ही समिति, सभा, संघ या दल आदि कहा जाता है। एक-एक व्यक्ति मिलकर जाति और अनेक जातियाँ मिलकर देश बनते हैं।

जिस प्रकार समुद्र के सद्भाव में ही उसकी अनन्त बिन्दुओं की सत्ता बनती है और उसके अभाव में उन बिन्दुओं की सत्ता नहीं बनती उसी प्रकार अनेकान्त रूप वस्तु के सद्भाव में ही सर्व एकान्त दृष्टियाँ सिद्ध होती हैं और उसके अभाव में एक भी दृष्टि अपने अस्तित्व को नहीं रख पाती। आचार्य सिद्धसेन अपनी चौथी द्वात्रिंशिका में इसी बात को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रतिपादन करते हैं:

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टयः।
न च तासु भवानुदीक्ष्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः।।

"– जिस प्रकार समस्त नदियाँ समुद्र में सम्मिलित हैं उसी तरह समस्त दृष्टियाँ अनेकान्त-समुद्र में मिली हैं। परन्तु उन एक-एक में अनेकान्त दर्शन नहीं होता। जैसे पृथक्-पृथक् नदियों में समुद्र नहीं दीखता।"

इसे एक अन्य उदाहरण से भी समझा जा सकता है। राजेश एक व्यक्ति है। वह अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है तथा अपने पुत्र की अपेक्षा पिता है। वह पति है एवं जीजा भी। मामा है और भानजा भी। अब यदि कोई उसे केवल मामा ही माने और अन्य सम्बन्धों को गलत ठहरादे तो यह राजेश नामक व्यक्ति का सही परिचय नहीं है, इसमें हठधर्मिता है / अज्ञान है। महावीर इस प्रकार के आग्रह को वैचारिक हिंसा कहते हैं। अज्ञान से अहिंसा फलित नहीं होती। अतः उन्होंने कहा कि स्याद्वाद पद्धति से प्रथम वैचारिक उदारता उपलब्ध करो। केवल अपनी बात कहना ही पर्याप्त नहीं है, दूसरों को भी अपना दृष्टिकोण रखने का अवसर दो। सत्य के दर्शन तभी होंगे। तभी व्यवहार की अहिंसा सार्थक होगी।

सत्य को विभिन्न कोणों से जानना और कहना दर्शन के क्षेत्र में नयी बात नहीं है। किन्तु महावीर ने स्याद्वाद के कथन द्वारा सत्य को जीवन के धरातल पर उतारने का कार्य किया है। यही उनका वैशिष्ट्य है। हम सभी जानते हैं कि हर वस्तु के कम से दो पहलु होते हैं। कोई भी वस्तु न सर्वथा अच्छी होती है और न सर्वथा बुरी –

"दृष्टं किमपि लोकेस्मिन् न निर्दोषं न निर्गुणम्।"

नीम सामान्य व्यक्ति को कड़वा लगता है। वही रोगी के लिए औषधि भी है। अतः नीम के सम्बन्ध में कोई एक धारणा बना कर किसी दूसरे गुण का विरोध करना बेमानी है। सामान्य नीम की जब यह स्थिति है तो संसार के अनन्त पदार्थों/अनन्त धर्मों के स्वरूप को जानकर उनका आग्रहपूर्वक कथन करना सम्भव नहीं है। महावीर ने इसे गहराई से समझा था। अतः वे मनुष्य तक ही सीमित नहीं रहे। प्राणी मात्र के स्पन्दन की सापेक्षता को भी उन्होंने स्थान दिया। मनुष्य की भांति एक सामान्य प्राणी भी जीने का अधिकार रखता है। अपनी साधनों द्वारा उसे भी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है। यह महावीर के स्याद्वाद की फलश्रुति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर अनेकान्तवाद व स्याद्वाद से उन गलत धारणाओं को दूर कर देना चाहते थे, जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में बाधक थीं। उनके युग में एकान्तिक दृष्टि से यह कहा जा रहा था कि जगत् शाश्वत है, अथवा क्षणिक है। इससे वास्तविक जगत् का स्वरूप खंडित हो रहा था। मनुष्य का पुरुषार्थ कुण्ठित होने लगा था नियतिवाद के हाथों। अतः महावीर ने आत्मा, परमात्मा और जगत् इन तीनों के स्वरूप का वह यथार्थ सामने रख दिया, जिससे व्यक्ति अपनी राह का स्वयं निर्णायक बन सके। अपूर्व थी – महावीर की यह देन। अनेकान्त व स्याद्वाद के सम्बन्ध में महावीर ने जो कहा वह उनके जीवन से भी प्रकट हुआ है। वे अपने जीवन में कभी किसी की बाधा नहीं बने। जगत् में रहते हुए किसी अन्य के स्वार्थ से न टकराना, कम लोगों के जीवन में सध पाता है। महावीर के अनुसार यह टकराहट अधूरे ज्ञान के अहंकार से होती है। प्रमाद व अविवेक से होती है। अतः अप्रमादी होकर विवेकपूर्वक आचरण करने से ही अनेकान्त जीवन में आ पाता है। अनेकान्त दृष्टि से ही सत्य का साक्षात्कार संभव है।

महावीर द्वारा प्रतिपादित स्याद्वाद में वस्तु के अनन्त धर्मात्मक होने के कारण उसे अवक्तव्य कहा गया है। मुख्य की अपेक्षा से गौण को अकथनीय कहा गया है। वेदान्त दर्शन में सत्य को अनिर्वचनीय और बौद्ध दर्शन में उसे शून्य व विभज्यवाद कहा गया है। अन्य भारतीय दार्शनिकों के अतिरिक्त प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन व दार्शनिक वर्टनरसेल के सापेक्षवाद के सिद्धान्त भी महावीर के स्याद्वाद से मिलते-जुलते हैं। महावीर ने कहा था कि वस्तु के कण-कण को जानो तब उसके स्वरूप को कहो। ज्ञान की यह प्रक्रिया आज के विज्ञान में भी है। इसका अर्थ है कि स्याद्वाद का चिन्तन संशयवाद नहीं है। अपितु, इसके द्वारा मिथ्या मान्यताओं की अस्वीकृति और वस्तु के यथार्थ पक्षों की स्वीकृति होती है। विचार के क्षेत्र में इससे जो सहिष्णुता विकसित होती है वह दीनता व जी-हजूरी नहीं है, बल्कि मिथ्या अहंकार के विसर्जन की प्रक्रिया है।

दर्शन व चिन्तन के क्षेत्र में अनेकान्त व स्याद्वाद की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही व्यावहारिक दैनिक जीवन में। वस्तुतः इस विचारधारा से अच्छे-बुरे की पहिचान जागृत होती है। अनुभव बताता है कि एकान्त विग्रह है, फूट है, जब कि अनेकान्त मैत्री है, संधि है। इसे यों भी समझ सकते हैं कि जिस प्रकार सही मार्ग पर चलने के लिए कुछ अन्तर्राष्ट्रीय यातायात संकेत बने हुए हैं। पथिक उनके अनुसरण से ठीक-ठीक चल कर अपने गन्तव्य पर पहुँच जाते हैं। उसी प्रकार स्वस्थ चिन्तन के मार्ग पर चलने के लिए स्याद्वाद द्वारा महावीर ने सप्तभंगी रूपी सात संकेतों की रचना की है। इनका अनुगमन करने पर किसी बौद्धिक दुर्घटना की आशंका नहीं रह जाती। अतः बौद्धिक शोषण का समाधान है – स्याद्वाद।

महावीर के स्याद्वाद से फलित होता है कि हम अपने क्षेत्र में दूसरों के लिए भी स्थान रखें, अतिथि के स्वागत के लिए हमारे दरवाजे हमेशा खुले हों। हम प्रायः बचपन से कागज पर हाशिया छोड़ कर लिखते आये हैं, ताकि अपने लिखे हुए पर कभी संशोधन की गुंजाइश बनी रहे। जो हमने अधूरा लिखा है, वह पूर्णता पा सके। महावीर का स्याद्वाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें हाशिया छोड़ने का संदेश देता है। चाहे हम ज्ञान संग्रह करें अथवा धन व यश का, प्रत्येक के साथ सापेक्षता आवश्यक है। संविभाग की समझ जागृत होना ही महावीर के अनेकान्त को समझना है। यही हमारे चरित्र की कुंजी है। अनेकान्त हमारे चिन्तन को निर्दोष करता है। निर्मल चिंतन से निर्दोष भाषा का व्यवहार होता है। सापेक्ष भाषा व्यवहार में अहिंसा प्रकट करती है। अहिंसक वृत्ति से अनावश्यक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रह और किसी का शोषण नहीं हो सकता। जीवन अपरिग्रही हो जाता है। इस तरह आत्म शोधन की प्रक्रिया का मूलमन्त्र है – महावीर का स्याद्वाद। जैनाचार्य कहते हैं कि संसार के उस एक मात्र गुरु अनेकान्तवाद को मेरा नमस्कार है, जिसके बिना इस लोक का कोई व्यवहार सम्भव नहीं है। यथा –

जेण विणा लोयस्स वि ववहारो सव्वहा न निव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स।।

– आचार्य एवं अध्यक्ष,
जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

❑ **डा. श्री प्रेमसुमन जैन का जन्म सन् १९४२ में जबलपुर में हुआ। आपने वाराणसी, वैशाली व बोधगया में संस्कृत, पाली, प्राकृत, जैनधर्म एवं भारतीय संस्कृति का गम्भीर अध्ययन किया। आपने लगभग २० पुस्तकों का लेखन-संपादन किया और १२५ शोधपत्र प्रकाशित किए। आप सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। आपने भारत व विदेशों में अनेक सम्मेलनों में शोधपत्र प्रस्तुत किए तथा जैन विद्या पर व्याख्यान दिये। 'प्राकृत-अध्ययन प्रसार संस्थान', उदयपुर के निदेशक एवं "प्राकृत-विद्या" पत्रिका के संपादक। सुप्रतिष्ठित लेखक, पत्रकार, वक्ता एवं संगठक। प्राकृत-विद्या के प्रति पूर्णतः समर्पित व्यक्तित्व !**

मनुष्य का भाग्य जब दुर्भाग्य में परिणत होता है तो बुरे कर्मों का उदय होता है। दिन दुर्दिन हो जाते हैं तो सब बातें विपरीत हो जाती हैं। दुश्मन प्रसन्न होते हैं। इस दशा को देखकर अपने सज्जन भी पराये हो जाते है और लेनदार तगादा, वापिस कर्ज की मांग का आग्रह करते हैं - "लाओ दो" ऐसी दुखद स्थिति में सुख कहाँ? शरीर का ढांचा हिल जाता है, चरमरा जाता है क्यों कि प्रति समय "गम की रोटी" यानि दुःख ही दुःख, चिंता ही चिंता सताती है। खुशी तो शुष्क हो गई और हृदय में दुःख की शूलें बढ़ गई। विपदग्रस्त व्यक्ति की दशा है यह। विपत्ति में पड़े व्यक्ति को विपद्ग्रस्त ही उससे सहानुभूति जताता है कि भाईजान ! तूं क्यों कुछ सोच रहा है? मेरी तरफ देख, मैं भी विपद्ग्रस्त हूँ। वह हमदर्दी जताएगा, उससे कुछ पूछने की कोशिश करेगा। लेकिन संपत्ति में रहने वाला व्यक्ति विपत्ति में रहने वाले की मनः स्थिति को क्या समझेगा और उसे कैसे समझाएगा?

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org